

## भारतीय सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था पर पाश्चात्यकरण का प्रभाव एवं सम्भावित समाधान

बीज शब्द :

व्यवस्था, पाश्चात्यकरण, परिवर्तन, प्रभाव, श्रम प्रधान।

भारत में सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था परस्पर घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित रही है। भारतीय ग्राम्य सामाजिक संरचना के आधार थे। भारतीय अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था थी। ग्रामीण अर्थव्यवस्था स्वयं-पूर्ति अर्थव्यवस्था के साथ अतिरिक्त सृजक अर्थव्यवस्था भी थी परन्तु उदारीकरण, निजीकरण एवं विश्वव्यापीकरण के पश्चात् भारतीय सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था में अधिकाधिक परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहे हैं। इन सभी परिवर्तनों के प्रभाव ने भारतीय सामाजिक-आर्थिक संरचना की जबरदस्त कायापलट की है। जिसके कारण अतिरिक्त सृजक अर्थव्यवस्था बाजारोन्मुखी अर्थव्यवस्था की ओर प्रवृत्त हुई है। पाश्चात्य संस्कृति के हावीपन ने एक अच्छे भले सामाजिक प्राणी को मात्र आर्थिक प्राणी बनाकर छोड़ दिया है जिससे भारतीय सामाजिक-आर्थिक विशेषताओं सम्बन्धी धरोहर समाप्त हो गयी है। अतः वर्तमान समय में देश की आवश्यकतानुसार मूल विशेषताओं का पुनर्जागरण किया जाना अति आवश्यक है जिससे भारत की विश्व में अपनी पहचान बन सकेगी।

\*\*\*\*\*

डॉ० उपासना शर्मा  
गवर्नमेंट पी.जी.कॉलेज  
द्वाराहाट, अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड

# भारतीय सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था पर पाश्चात्यकरण का प्रभाव एवं सम्भावित समाधान

**भ**ारत एक ऐसा गणराज्य है जहाँ राज्य एवं अन्तर्राज्यीय स्तर पर विविधता विद्यमान है। यह विविधता सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक आदि समस्त क्षेत्रों में पायी जाती है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में दीर्घकाल से चली आ रही प्रथाओं, परम्पराओं, आदर्शों, मूल्यों व रूढ़ियों आदि का प्रमुख स्थान रहा है। भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में व्यवस्था अत्यधिक जटिल एवं सुदृढ़ थी। ब्रिटिश पूर्व भारतीय ग्राम्य सामाजिक संरचना के आधार थे। वहाँ प्रमुखतः तीन वर्गों का अस्तित्व था। जिनमें कृषक, हस्तशिल्पी तथा उनके आश्रित शामिल थे। व्यवस्था जाति प्रथा के अनुसार प्रचलित थी। एक व्यक्ति अपने पूर्वजों का कार्य या व्यवसाय अपनाता था, जबकि अन्य व्यक्तियों का प्रवेश सीमित था। जाति प्रथा के साथ-साथ संयुक्त परिवार प्रथा की अधिकता थी। परिवार के सदस्य अपने परिवारिक सदस्यों को महत्त्व देते थे। स्त्रियों या महिलाओं को सीमित स्वतन्त्रता प्राप्त थी। इस प्रकार ग्रामीण समाज स्वायत्त समाज था।

भारतीय आर्थिक व्यवस्था का स्वरूप ग्रामीण था और यहाँ समस्त आर्थिक क्रियाएँ श्रम विभाजन के आधार पर संचालित की जाती थी। गाँवों में वस्तुओं का उत्पादन कुटीर व ग्रामोद्योगों के माध्यम से किया जाता था। भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था ही नहीं बल्कि अतिरेक प्रधान या अतिरेक सृजक अर्थव्यवस्था भी थी। उत्पादन मुख्यतः उपभोग हेतु किया जाता था न कि व्यवसायीकरण हेतु। कृषि से सम्बन्धित लघु उद्योगों के रूप में मूसल के द्वारा धान कुटाई, गन्ने की पिराई, तेल निकालना तथा लोहे के सामान कृषि क्षेत्र में प्रयोग किये जाने हेतु बनाना आदि सम्मिलित था। जातीय कौशल आधारित हस्तनिर्मित वस्तुएँ (मिट्टी के बर्तन और लोहे से तैयार सामान) ग्रामों से बाहर नहीं भेजी जाती थीं। यद्यपि ग्रामीण क्षेत्रों के संगठन की तुलना में नगरों की संरचना कुछ भिन्न थी। शासकीय संरक्षण के कारण कुछ नगरों का विकास राजनीतिक केन्द्र के रूप में (दिल्ली, आगरा, लाहौर आदि), कुछ नगरों का विकास धार्मिक केन्द्र के रूप में (इलाहाबाद, वाराणसी, मथुरा, उज्जैन आदि) तथा कुछ नगरों का विकास व्यापारिक नगरों के रूप में (बंगलुरु, ढाका, मिर्जापुर आदि) हुआ। समस्त नगर गाँवों की भाँति आत्मनिर्भर इकाई नहीं

थे। यहाँ जटिल श्रम विभाजन था तथा स्थानीय आवश्यकताओं की माँग के अनुसार वस्तुओं का उत्पादन किया जाता था। यहाँ उत्पादित सामान की राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर माँग भी थी। कहा जाये तो ग्राम व नगर दोनों में जनता का सन्तुष्टि का स्तर लगभग समान था और सभी मनुष्य सामाजिक प्राणी के रूप में जीवन निर्वाह करते थे।

## शोध का उद्देश्य:

इस शोध पत्र का उद्देश्य भारत के सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र में पाश्चात्यकरण के कारण हुये परिवर्तनों का पता लगाना है तथा भारत में पाश्चात्यकरण के प्रभावों का अध्ययन करना है। इसके साथ ही कुछ ऐसे सुझाव दिया जाना भी है कि वर्तमान सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था में हुए परिवर्तनों को कैसे रोका जा सकता है जिससे विश्व में भारत की अपनी विरत पहचान बन सके।

इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु निम्न परिकल्पनाओं का निर्माण किया गया है।

**परिकल्पना:** प्रस्तुत शोध इन परिकल्पनाओं पर आधारित है कि—

1. उदारीकरण, निजीकरण व वैश्वीकरण ने भारतीय सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था को छिन्न-भिन्न कर दिया है।
2. भारतीय सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था पर पाश्चात्यकरण का अत्यधिक प्रभाव पड़ा है।
3. पाश्चात्यकरण से प्रभावित भारतीय सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन किया जाना आवश्यक है।

## साहित्यावलोकन:

प्रस्तुत शोध पत्र के सन्दर्भ में साहित्य का अवलोकन करने पर ज्ञात हुआ कि विषय से सम्बन्धित अनेक प्रकार के कार्य किये गये हैं परन्तु फिर भी यह शोध पत्र उन शोध कार्यों से भिन्न प्रकृति लिए हुए है और सबसे अलग है।

चक्रवर्ती रंगराजन के भाषणों की संग्रहित पुस्तक 'भारत की अर्थनीति' में कहा गया है कि नई आर्थिक नीतियों के अधीन देश की आर्थिक प्रगति भी अब सुस्थिर होती चली जा रही है और आशा की जाने लगी है कि कुछ ही वर्षों में भारत संसार के विकसित राष्ट्रों की प्रथम पंक्ति में अपना स्थान प्राप्त कर लेगा। इस स्थिति में भारतीय अर्थनीति के सभी आयामों को सही ढंग

से जानना प्रत्येक भारतवासी के लिए आवश्यक है जिससे प्रत्येक भारतवासी भारत की इस विकास यात्रा में अपना योगदान कर सके।

अनुपम शर्मा व अन्य द्वारा सम्पादित पुस्तक 'इक्कीसवीं शताब्दी में महिलाएँ' में उदारीकरण, निजीकरण तथा वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप भारत में महिलाओं की पारिवारिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा धार्मिक क्षेत्र में परिवर्तन की स्थिति को विश्लेषित किया गया है। इसको सार रूप में कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण के कारण महिलाओं के परम्परागत विचारों को समाप्त करके उन्हें समाज के साथ खड़े होने की शक्ति को बढ़ावा मिला है जिससे उन्हें रोजगार के नये अवसर उपलब्ध हुए हैं। महिलाओं ने पारिवारिक आर्थिक सुदृढ़ता प्रदान करने के साथ ही सामाजिक परिवर्तन लाने में भी अहम भूमिका निभाई है।

अमर्त्य सेन की पुस्तक 'भारत विकास की दशाएँ' भारत में सामाजिक-आर्थिक विकास के नए मुद्दे प्रस्तुत करती है। इसमें आर्थिक सुधार के प्रमुख मुद्दों का विश्लेषण किया गया है। इसमें सेन ने राज्य तथा बाजार के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में विचार दिये हैं। उपेक्षितों, तथा गरीबों के लिए कार्यक्रम के साथ सहानुभूतिपूर्ण निष्पक्ष विश्लेषण इस पुस्तक की प्रमुख विशेषता है। भारत की सामाजिक-आर्थिक नीति में रुचि रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह पुस्तक महत्वपूर्ण है।

इन अध्ययनों से किये गये अवलोकन के पश्चात् स्पष्ट होता है कि भारत के सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र में पाश्चात्यकरण के कारण अनेक परिवर्तन हुए हैं। इन परिवर्तनों का दुष्प्रभाव भी भारतीय समाज पर देखने को मिल रहा है। अतः भारतीय सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था का अस्तित्व बनाये रखने हेतु यह आवश्यक है कि वर्तमान समय में ऐसी नीतियों को प्रोत्साहित किया जाये जिससे भारत का अस्तित्व विश्व में अक्षुण्ण बना रहे। भारत के सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र में पाश्चात्यकरण के कारण हुए परिवर्तनों एवं प्रभावों को निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

#### सामाजिक क्षेत्र में परिवर्तन:

भारत में सामाजिक परिवर्तन की राष्ट्र निर्माण में अहम भूमिका रही है। विदेशी आक्रमणों के समय सामाजिक व्यवस्था व संस्थात्मक ढाँचे का स्वरूप भिन्न-भिन्न रहा। मौर्यकाल,

मध्यकाल, मुगलकाल आदि में स्थिति भिन्न-भिन्न थी। सती प्रथा, पतियों की पूजा, सम्पत्ति में अधिकार, आर्थिक और धार्मिक क्षेत्र में महिलाओं की अवहेलना, पर्दा प्रथा, बाल विवाह और विधवा विवाह निषेध आदि त्रुटियाँ भारतीय समाज में उत्पन्न हो गयी थीं। इनका परिणाम यह हुआ कि महिलाओं को पूर्णतः हीन वस्तु की तरह माना जाने लगा। समाज में उनका कोई महत्त्व नहीं रह गया साथ ही निर्णय लेने में कोई भूमिका नहीं रह गयी। सन् 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस व प्रथम इंडियन चैम्बर ऑफ कॉमर्स की स्थापना से देश की सामाजिक संरचना में परिवर्तन लाने के लिये प्रशासनिक सुधार कार्यक्रमों को बढ़ावा दिया गया लेकिन यह प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् तक ही रहा। सामाजिक व्यवस्था में सुधार लाने का कार्य राजा राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, दयानन्द सरस्वती, केशवचन्द्र सेन तथा महात्मा गाँधी द्वारा भी किये गये। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के पश्चात सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन प्रारम्भ हो गये। पर्दा प्रथा, बाल विवाह, विधवा पुनर्विवाह निषेध आदि जैसे कृत्य समाज में कम होते चले गये। सामाजिक-सांस्कृतिक क्षेत्र में नियमों एवं कानूनों के लागू होने से व्यवस्था के स्वरूप में परिवर्तन आने लगे। भारतीय संविधान के अनुसार समानता के आधार पर सामाजिक क्षेत्र के साथ-साथ राजनीतिक सहभागिता का स्तर समान हो गया। प्रत्येक भारतीय नागरिक को चाहे वह महिला हो या पुरुष समान रूप से अधिकारों के रूप में सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, राजनैतिक तथा आर्थिक स्वतन्त्रता प्रदान की जाती रही है।

वर्ष 1990 में उदारीकरण, निजीकरण व वैश्वीकरण से भारतीय सामाजिक व्यवस्था में अत्यधिक परिवर्तन देखने को मिलता है। नई आर्थिक नीति से कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था का औद्योगिक अर्थव्यवस्था की ओर रूपान्तरण हुआ है जिसके कारण उद्योग, बैंकिंग, बीमा, परिवहन, बाजार, अनुसन्धान और विकास आदि समस्त क्षेत्रों में परिवर्तन हुआ है। इन सभी परिवर्तनों से भारतीय समाज की जबरदस्त कायापलट हो गयी है। पाश्चात्य संस्कृति के सम्पर्क में आने से वर्तमान समय में भारतीय समाज के परिवर्तित स्वरूप में परिवर्तन आया है।

#### जाति व्यवस्था में परिवर्तन:

जाति भारतीय सामाजिक जीवन की अद्भुत विशेषता रही है। प्राचीन समय में जाति व्यवस्था को दैवीय आधार माना

जाता था। यह कर्म के नियमों से सम्बन्धित भी थी। इसके अनुसार मनुष्य का स्तर उसके पूर्व जन्म में किये गये कर्मों द्वारा निर्धारित माना गया। वैदिक काल में जाति का निर्धारण जन्म द्वारा निर्धारित किया गया। हिन्दू सभ्यता एवं संस्कृति में जाति संगठन यान्त्रिक रूप से संरक्षित था। वंशानुगत विशेषता द्वारा कौशल एवं शिल्पकार के बीच सुरक्षा प्राप्ति भी जाति की विशेषता रही। जाति अपने सदस्यों को वाह्य प्रतिबन्धों से सुरक्षा प्रदान करती रही और जाति ने ही अपने व्यापार एवं व्यवस्था को भी शोषण के विरुद्ध कार्य करने में योगदान दिया। इसके पश्चात् कभी कर्म के नियमों के आधार पर जाति का निर्धारण किया जाता रहा है। जाति व्यवस्था अपने उद्गम से लेकर आज तक एक जैसी नहीं रही है बल्कि परिवर्तनशील रही है। इस परिवर्तन के पीछे मूल कारण बदलते उत्पादन सम्बन्ध, उत्पादन पद्धति और अन्तर्विरोध रहे हैं। यह भी स्पष्ट होता है कि जाति व्यवस्था का जन्म वर्ग, राज्य और पितृसत्ता के साथ अस्तित्व में आया था। समयान्तर राजनीतिक दलों की आरक्षण नीति और जाति आधारित मत बैंक व्यवस्था ने कई समस्याओं को जन्म दिया। धीरे-धीरे जाति का अस्तित्व खो गया जिससे नयी पीढ़ी अपनी जातिगत विशेषताओं से अपरिचित हो रही है।

#### पारिवारिक व्यवस्था में परिवर्तन:

तीव्र परिवर्तन के सामाजिक व आर्थिक दौर में संयुक्त परिवार का स्थान एकाकी परिवार ने ले लिया है। पारिवारिक परिवर्तन में कई प्रमुख कारकों ने योगदान दिया है। इनमें औद्योगीकरण, नगरीकरण, व्यापार विविधता, महिलाओं का परिवर्तित स्तर, पलायन तथा विज्ञापन आदि का प्रभाव अधिक रहा है। पश्चिमीकरण और आधुनिकीकरण के कारण निरन्तर विविधता के साथ सामाजिक सम्बन्धों का पनपना भी दिखाई पड़ रहा है। संयुक्त परिवार से परिवर्तित होते एकाकी परिवारों में भी विघटन की स्थिति बन रही है। विवाह के पश्चात् भावनात्मक लगाव का न होना विघटन का कारण बन रहा है। इससे भारतीय विवाह संस्था का रूप विकृत होता जा रहा है जो भारतीय संस्कृति के लिये हानिकारक है।

#### महिलाओं के स्तर में परिवर्तन:

ऐतिहासिक सबूत पेश करते हैं कि वैदिक काल के दौरान महिलाओं को समान स्तर प्राप्त था। वेदों के अध्ययन से

पूर्व बालक एवं बालिका दोनों का उपनयन संस्कार आवश्यक था। केवल उच्च शिक्षित महिलाएँ ही पारम्परिक संगीत में पारंगत नहीं थी बल्कि वे धार्मिक और आर्थिक क्रियाओं में समान रूप से सहभागी थीं। उन्हें सम्पत्ति में समान अधिकार प्राप्त थे। तत्पश्चात् आर्यों ने गैर-आर्य महिलाओं से विवाह किया। जो संस्कृत नहीं जानती थी और जिन्हें धार्मिक समारोह में प्रतिभाग करने की अनुमति नहीं थी। समय के प्रवाह के साथ स्त्री शिक्षा में गिरावट आने लगी। कन्याओं को गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त करने की प्रथा समाप्त हो गयी तथा घर पर ही शिक्षा प्राप्त करने का समर्थन किया गया जिससे कुलीन घरों की महिलाएँ ही शिक्षा ग्रहण कर पाने में समर्थ थी। परिणामस्वरूप उनके अधिकार कम होते गए। स्त्रियों की दशा पतनोन्मुख हो गयी। स्त्रियों का उपनयन संस्कार बन्द हो गया तथा विवाह के अतिरिक्त अन्य संस्कारों में वैदिक मंत्रों का उच्चारण भी बन्द हो गया। विवाह योग्य आयु घटा दी गयी जिससे विधिवत शिक्षा प्राप्त करना कठिन हो गया। उपनयन संस्कार का स्थान विवाह ने ले लिया था। धार्मिक कार्यों में उनकी उपस्थिति औपचारिकता बनकर रह गयी।

पश्चिमीकरण व आधुनिकीकरण के कारण विवाह की आयु में वृद्धि हुई है। अन्तर्जातीय, उपजातीय, अन्तर्भाषीय, अन्तर्क्षेत्रीय अन्तर्धार्मिक और बेमेल विवाह में वृद्धि हुई है। पारिवारिक सम्बन्धों के रूप में पति-पत्नी, माता-पिता और बच्चों के बीच तेजी से परिवर्तन हो रहे हैं। महिलाओं की आर्थिक स्थिति में परिवर्तन के कारण परम्परागत स्वतन्त्रता के बन्धन कुछ सीमा तक ढीले पड़ रहे हैं। परम्परागत एवं वंशानुगत कार्यों एवं शक्तियों के स्थान पर मानवीय सम्बन्धों की पुनर्संरचना हुई है। निम्न एवं पिछड़े जातीय समुदायों को अवसरों की उपलब्धता होने से उनकी स्थिति में परिवर्तन आया है। अतः कहा जा सकता है कि वर्तमान समय में भारत में सामाजिक व सांस्कृतिक परिवर्तन से जाति व्यवस्था, पारिवारिक व्यवस्था तथा महिलाओं के स्तर आदि में परिवर्तन हुए हैं।

#### पाश्चात्यकरण के सामाजिक क्षेत्र पर प्रभाव:

भारतीय समाज के स्वरूप, आकार व ढाँचे पर प्रभाव भी दृष्टिगोचर होने लगे हैं। इससे व्यक्तियों की जीवनशैली पर अत्यधिक प्रभाव पड़ रहा है। इसमें अन्न उत्पादन, धातु कर्म, सामाजिक, राजनैतिक व सांस्कृतिक सन्दर्भ में पुरावशेषों का

मूल्यांकन पर्यावरण के साथ तालमेल बिठाते हुए स्वसंगठन के तहत क्रियाकलाप, राजकार्य, व्यवहार प्रणाली, विचारधारा और शक्ति आदि भी आते हैं।

नगरीकरण और औद्योगीकरण के प्रभाव को सामाजिक परिवर्तन के सूचक के रूप में देखा जा सकता है। इसने व्यक्तिगत व्यवहार पर प्रभाव, सामाजिक संस्थाओं पर प्रभाव तथा दिन-प्रतिदिन के व्यवहारिक मूल्यों के प्रयोग करने पर प्रभाव डाला है। सामाजिक परिवर्तक के रूप में प्रौद्योगिकी, धर्मवाद, आधुनिकीकरण आदि कारकों का भी समाज पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा है जिससे मानव को स्वर्गरेण्य में वृद्धि की इच्छा हुई है, अवसरों की समानता प्रभावित हुई है और प्रदत्त, परम्परागत और वंशानुगत श्रेष्ठता की अपेक्षा क्रियात्मक और अर्जित श्रेष्ठता को महत्त्व दिया जा रहा है। कुल मिलाकर पाश्चात्यकरण ने भारतीय समाज को प्रजातांत्रिक समाज से पश्चिमी समाज की ओर प्रवृत्त किया है।

#### भारत की आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन:

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो सन् 1850 में रेलवे और स्टीमर्स के प्रारम्भ से भारत में नये कार्य क्षेत्र का विस्तार हुआ। तत्पश्चात् भारतीय अर्थव्यवस्था यूरोपीय अर्थव्यवस्था व विश्व बाजार अर्थव्यवस्था से सम्बद्ध हो गयी तथा व्यापार के क्षेत्र का विस्तार हुआ जिसने तात्कालिक आधुनिक पूँजीवाद को जन्म दिया। रेलवे एवं व्यापारिक कार्यों के विस्तार होने से प्रोविंशियल प्रतिबन्धों में कमी आ गयी तथा भारत के शहरों में बड़ा समुदाय व्यापारिक वर्ग के रूप में उभरकर सामने आया। शनैःशनैः ब्रिटिश शासन काल में भारतीय आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था बाजार अर्थव्यवस्था में परिवर्तित होने लगी। प्रत्येक आर्थिक गतिविधि वाणिज्यिक हो गयी। अर्थव्यवस्था में उत्पादन के समस्त साधनों का प्रयोग बाजार में विक्रय हेतु वस्तुओं के निर्माण से लगाया जाने लगा।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय भारतीय अर्थव्यवस्था अत्यन्त क्षीण स्वरूप में थी। यह उपनिवेशवादी, अर्द्धसामन्ती, पिछड़ी तथा आर्थिक गतिहीनता का पर्याय बन गयी। स्वतन्त्रता के पश्चात् सरकार ने जमींदारी प्रथा की समस्या का विवेचन किया। इसका उद्देश्य कृषि की समाजवादी व्यवस्था में साधनों की आवश्यकता से था। कृषि भूमि का स्थायी स्वामित्व कृषि करने वाले के पास न होने से बेगार श्रमिक को अनुचित अपशब्द भी कह दिये जाते

थे। इसके सहित अन्य कारणों से शीघ्र ही जमींदारी प्रथा में कानून द्वारा सुधार करके केन्द्रीय सरकार द्वारा परिवर्तन कर दिया गया। सन् 1961 के अधिकारिक स्रोत के द्वारा सम्पूर्ण देश में मध्यस्थों की भी समाप्ति कर दी गयी।

एक क्षत-विक्षत अर्थव्यवस्था का विकास करने के उद्देश्य से आर्थिक नियोजन प्रक्रिया को अपनाया गया। आर्थिक नियोजन का उद्देश्य विकास हेतु अर्थव्यवस्था को तैयार करना, कृषि क्षेत्र को प्राथमिकता देना, औद्योगीकरण को प्राथमिकता देना तथा औद्योगीकरण क्षेत्र में भी विशेष रूप से पूँजीगत माल तैयार करने वाले उद्योगों पर जोर देना था। इसके साथ लघु उद्योगों एवं कृषि उत्पादन वृद्धि पर जोर, सामाजिक न्याय के साथ विकास तथा पिछड़े क्षेत्रों का विकास भी करना रहा। भारत की आर्थिक विकास एवं नियोजन प्रक्रिया के परिणामस्वरूप उपभोक्ता वस्तु उद्योगों के साथ-साथ माध्यमिक और पूँजीवाद उद्योगों का विकास तो हुआ परन्तु भारतीय अर्थव्यवस्था वैश्विक स्तर पर स्पर्द्धात्मक नहीं हो पा रही थी।

अतः 1991 में भारत में उदारीकरण, निजीकरण व वैश्वीकरण (LPG) की प्रक्रिया अपनायी गयी क्योंकि जून 1991 के अन्त में देश में अभूतपूर्व आर्थिक संकट उत्पन्न हो गया जिसके कारण अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भारतीय अर्थव्यवस्था में विश्वास डगमगाने लगा। सन् 1991 में अपनायी गयी नई आर्थिक नीति का उद्देश्य अर्थव्यवस्था में प्रतियोगी वातावरण तैयार करके उत्पादन और कुशलता में वृद्धि करना था। इस नीति के मुख्य अंग नई औद्योगिक नीति, नई व्यापार नीति, नई राजकोषीय नीति, नई मौद्रिक नीति, नई निवेश नीति तथा वित्त का विश्वव्यापीकरण थे। उदारीकरण नीति के प्रमुख उद्देश्य में घरेलू उत्पादन प्रणाली में सुधार तथा उत्पादन क्षमता का विकास करना, रोजगार के अवसरों में वृद्धि करना, वस्तुओं तथा सेवाओं की गुणवत्ता में सुधार करना तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की प्रतियोगिता में शामिल होना था।

जबकि निजीकरण के प्रमुख उद्देश्य थे- अर्थव्यवस्था की विभिन्न आवश्यकता पूर्ति हेतु वित्तीय संसाधनों को जुटाना, प्रतियोगिता में वृद्धि करना, उत्पादकता में वृद्धि करना तथा परिचालन क्षमता बढ़ाना, बाह्य ऋणों को घटाना, प्रबन्धकीय योग्यता और दक्षता प्रदान करना, राष्ट्रीय आवश्यकताओं और प्राथमिकताओं के अनुसार निजी क्षेत्र की उत्पादन क्रियाओं को सार्वजनिक क्षेत्र के साथ समन्वित करना, नई औद्योगिक इकाईयों की स्थापना करना

तथा योजनाओं में आरम्भ की गयी आयात-प्रतिस्थापन क्रिया को बल प्रदान करना, उपयुक्त तकनीक के प्रसार, अर्थव्यवस्था के आधुनिकीकरण तथा उद्योगों के विवेकीकरण हेतु औद्योगिक शोध व अनुसन्धान कार्यक्रम तीव्र करना और उनका विकास करना था। नई आर्थिक नीति की तीसरी अवधारणा वैश्वीकरण के चार प्रमुख अंग थे।

1. व्यापार अवरोधकों को कम करना ताकि वस्तुओं का विभिन्न देशों में निर्बाध आयात-निर्यात हो सके।
2. पूँजी का स्वतन्त्र रूप से प्रवाह हो सके।
3. टेक्नोलॉजी का निर्बाध प्रवाह तथा
4. विश्व के विभिन्न देशों के बीच ऐसा वातावरण तैयार करना ताकि श्रम का निर्बाध प्रवाह हो सके।

वैश्विक स्तर पर विश्व की अर्थव्यवस्था से सम्बद्ध होने के पश्चात भारत में अत्यधिक परिवर्तन हुए हैं। जिनमें उदारीकरण के परिणामस्वरूप वस्तुओं तथा सेवाओं की गुणवत्तापूर्ण उपलब्धता हुई है। यद्यपि प्रतियोगिता में टिके रहने के लिए गलाकाट स्पर्द्धा का जन्म हुआ है परन्तु उपभोक्ताओं को वस्तुओं की प्राप्ति उचित कीमत एवं सीमित समय में हो जाती है। वर्तमान समय में उपभोक्ताओं की सन्तुष्टि के स्तर में अधिकतम वृद्धि हुई है। सार्वजनिक क्षेत्र के साथ निजी क्षेत्र की उत्पादन क्रियाओं को भी शामिल किया गया है। वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्द्धा में टिके रहने हेतु उपयुक्त ढाँचे को प्राथमिकता प्रदान की गयी है। इसमें उपयुक्त तकनीकी, आधुनिकीकृत साधन, शोध व विकास कार्यक्रम को बढ़ावा दिया गया है।

#### पाश्चात्यकरण का आर्थिक क्षेत्र पर प्रभाव:

भारत के आर्थिक क्षेत्र में पाश्चात्यकरण के प्रभावों की बात की जाए तो आत्मनिर्भर भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था के स्वरूप में परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। ग्रामीण क्षेत्रों से तीनों प्रमुख वर्ग कृषक, हस्तशिल्पी तथा उनके आश्रितों का लोप होता जा रहा है। कार्य के बदले इन वर्गों को दिये जाने वाले पारिश्रमिक का रूप पूर्णतया परिवर्तित हो गया है जिसने बाजारोन्मुख प्रक्रिया को बढ़ावा दिया है। इसे उपभोक्तावादी संस्कृति का भारत भी कहा जा सकता है। भारत में परम्परागत लघु, हस्तशिल्प व कुटीर उद्योग समाप्त हो गये हैं। उनका स्थान मशीनरी सम्बन्धी अन्य उद्योगों ने ले लिया है। जिन वस्तुओं का उत्पादन मात्र गाँवों में उपभोग हेतु

किया जाता था उनका व्यवसायीकरण हो गया है। कृषि भूमि पर कृषि से सम्बन्धित अन्य उद्योगों का प्रादुर्भाव तो हुआ है किन्तु कृषि उत्पादन में निरन्तर कमी हो रही है।

विगत दशकों के उपरान्त भारत की आर्थिक व्यवस्था पर उदारीकरण, निजीकरण और विश्वव्यापीकरण का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा है। इन नीतियों के द्वारा अर्थव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र चाहे वह प्राथमिक हो, द्वितीयक या तृतीयक, तीनों ही क्षेत्रों का विस्तार हुआ है। वस्तुओं, सेवाओं, पूँजी, श्रम तथा तकनीकी का निर्बाध प्रवाह होने से भारत अपनी पहचान वैश्विक स्तर पर बनाने में सफल रहा है। वर्तमान समय में अलग-अलग चरणों में भिन्न-भिन्न तकनीकी प्रगति के साथ आर्थिक गतिविधियाँ चल रही हैं। उच्च किस्म की तकनीकी या प्रौद्योगिकी पर अधिक जोर दिया जा रहा है। प्राचीन बाजार व्यवस्था का रूप बदलकर तकनीकी बाजार हो गया है। आजकल प्रत्येक वस्तु की उपलब्धि इन्टरनेट के माध्यम से बुकिंग कराकर हो रही है। यहाँ तक कि तकनीकी द्वारा स्थानीय, प्रादेशिक एवं राष्ट्रीय स्तर के बाजार सहित अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी प्रत्येक वस्तु की माँग की जा रही है। पश्चिमीकरण का प्रभाव ही है कि मनुष्य सामाजिक प्राणी के स्थान पर मात्र आर्थिक प्राणी के रूप में अपनी पहचान बना रहा है।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह निष्कर्ष सामने आता है कि उदारीकरण, निजीकरण व वैश्वीकरण ने भारतीय सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था को छिन्न-भिन्न कर दिया है। प्रारम्भिक काल से वर्तमान समय तक भारतीय सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था में अत्यधिक परिवर्तन आया है। इस सन्दर्भ में यह भी कहा जा सकता है कि भारत में प्राचीन सामाजिक संस्थाओं का ह्रास हो गया है। ग्रामीण समुदाय में प्राथमिक सम्बन्ध, स्वायत्तता, आत्मनिर्भर ग्राम्य इकाई का स्वरूप लगभग समाप्त होने के कगार पर है। एक ओर जाति संगठन में आर्थिक दबाव के कारण चुनौतियाँ बढ़ रही हैं तो दूसरी तरफ सामाजिक संरचना में नवीन विचारों का प्रादुर्भाव होने से ग्रामीण क्षेत्रों से नगरीय क्षेत्रों की ओर जाने से संयुक्त परिवार एकाकी परिवार का रूप ले रहे हैं। सामाजिक सम्बन्धों के द्वितीयक होने के कारण मनुष्यों की आदत, व्यवहार, खान-पान, वेशभूषा, मनोवृत्ति आदि पर प्रभाव पड़ रहा है जिससे मनुष्य अपने सगे सम्बन्धियों, परिवार, रिश्तेदार की अपेक्षा अन्यो को महत्त्व देने लगा है। ऐसा व्यवहार सामाजिक समरसता

में हानिकारक है। हालांकि सांस्कृतिक अन्तःक्रिया होने से परस्पर सहयोग में वृद्धि हुई है परन्तु पाश्चात्य संस्कृति वैश्विक स्तर पर हावी होती जा रही है। एक तरह से आधुनिकीकरण के नाम पर पश्चिमी संस्कृति को थोपा जा रहा है जिससे देश की अपनी समृद्ध सामाजिक-सांस्कृतिक धरोहर शनैः शनैः समाप्त होती जा रही है। प्रौढ़ एवं युवा पीढ़ी में आर्थिक सम्पन्नता में वृद्धि न होने से तनाव की स्थिति उत्पन्न हो रही है।

पाश्चात्यकरण से प्रभावित भारत में सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र में जहाँ कुछ सकारात्मक प्रभाव दृष्टिगोचर होते हैं वहीं नकारात्मक प्रभावों की अधिकता दिखलाई पड़ रही है। जो भारतीय परिस्थितियों के सन्दर्भ में कदापि उचित नहीं है। दीर्घकाल से चली आ रही प्रथाओं ने परम्पराओं, आदर्शों, मूल्यों और संस्थात्मक ढाँचे को अत्यधिक प्रभावित किया है। जाति व्यवस्था में परिवर्तन होने से वंशानुगत विशेषताओं का लोप हो गया है। महिलाओं के स्तर में परिवर्तन का परिणाम भूमिका संघर्ष के साथ सामाजिक तनाव के रूप में सामने आ रहा है। भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था को आत्मनिर्भर व आंतरिक प्रधान अर्थव्यवस्था से बाजारोन्मुखी अर्थव्यवस्था की ओर उन्मुख किया है। उपभोक्तावादी संस्कृति को बढ़ावा देकर मात्र आर्थिक प्राणी बनने को बाध्य कर दिया है। जिन आर्थिक नीतियों का प्रारम्भ क्षत-विक्षत भारतीय अर्थव्यवस्था को विकास की गति प्रदान करने हेतु किया गया था (उदारीकरण निजीकरण, वैश्वीकरण) उनसे अर्थव्यवस्था का जो स्वरूप सामने आ रहा है वह एक ऐसे युग का सूत्रपात कर सकता है जिसमें परतन्त्रता, परावलम्बिता तथा अन्योन्याश्रिता ही रह जाये। इसलिये वर्तमान समय में ऐसे सुधारों को अपनाया जाये जिससे भविष्य की पीढ़ी के लिये आवश्यक सामाजिक-आर्थिक ढाँचा अपनी पुरातनता की पहचान लिये हुये हो। जो विश्व में भारत की अपनी विरत पहचान बना सके।

वर्तमान समय में पाश्चात्यकरण से अधिकतम प्रभावित भारतीय सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन किया जाना अत्यावश्यक है। भारतीय समाज एवं संस्कृति के संरक्षण एवं संवर्धन हेतु राजनेताओं, समाज सुधारकों तथा शैक्षणिक विद्वानों को सुझाव देकर अपनी बुद्धिमत्ता का अवसर बढ़ाने की दिशा में कार्य करना होगा। इसके साथ ही उत्पादन तथा सेवा क्षेत्रों में कार्य करने के इच्छुक व्यक्तियों को मिलने वाले वेतन को आकर्षण का केन्द्र बनाये रखना भी उचित रहेगा। विकेन्द्रित आर्थिक गतिविधियों

की ओर ध्यान दिया जाना भी श्रेयस्कर रहेगा।

चूँकि भारत में विभिन्न संस्कृतियों का ही नहीं, भिन्न-भिन्न उत्पादन तकनीकों का भी संगम हो रहा है। जो भारत में बेरोजगारी का प्रमुख कारण माना जा सकता है। राष्ट्रीय आवश्यकताओं के अनुसार उत्पादन तकनीकों में साधन सम्पन्नता की प्रकृति अवश्य प्रतिबिम्बित होनी चाहिए अर्थात् श्रमप्रधान तकनीकी को वरीयता प्रदान की जाए। यह भी कहा जा सकता है कि अति जनसंख्या होने के परिणामस्वरूप रोजगार के ऊँचे स्तर को प्राप्त करने के कार्य के स्थान पर श्रम आधारित गतिविधियों पर अधिक ध्यान केन्द्रित किया जाना चाहिए। वर्तमान मौजूदा परिस्थितियों में ऊँची विकास दर प्राप्त करने के लिए यह सुदृढ़ प्रयास किया जाना आवश्यक है। आर्थिक प्रयासों के साथ साथ सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों, व्यवहारों, आचारों-विचारों का आदान प्रदान भावी पीढ़ी में किया जाए क्योंकि जाति, धर्म, पारिवारिक संस्कृति ही परम्परागत एवं प्राचीन विशेषताओं को जीवन्तता प्रदान कर सकती है जिससे भावी पीढ़ी अपने समाज एवं संस्कृति से परिचित हो पायेगी। महिलाओं के आर्थिक योगदान के साथ ही सामाजिक योगदान में वृद्धि हेतु पारिवारिक एकीकरण को प्राथमिकता दी जाए ताकि उन्हें सामाजिक तनाव का सामना न करना पड़े। सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र में ऐसे सुधार करके पाश्चात्यकरण के अन्धानुकरण की प्रवृत्ति को रोका जा सकेगा और भारतीय सामाजिक व्यवस्था पुनः अपने परम्परागत स्वरूप में आत्मनिर्भरता के साथ सुदृढ़ हो सकेगी।

यह भी सत्य है कि आर्थिक प्रगति और सामाजिक विकास एक दूसरे के सामानार्थी हैं। इसलिये यह आवश्यक हो जाता है कि आर्थिक प्रगति के साथ-साथ सामाजिक क्षेत्र की गुणवत्ता में भी सुधार हो। आर्थिक प्रगति के मानक के रूप में जहाँ प्रति व्यक्ति आय के साथ अर्थव्यवस्था में कृषि, उद्योग तथा सामाजिक सेवाओं को सम्मिलित किया जाता है वहीं सामाजिक परिप्रेक्ष्य में सामुदायिक संगठन, स्वास्थ्य, शिक्षा, स्वच्छता तथा पेयजल आदि को भी शामिल किया जा सकता है। यदि हम पारम्परिक दृष्टिकोण से देखें तो आर्थिक विकास के साथ-साथ सामाजिक विकास की भी अत्यन्त आवश्यकता है क्योंकि विकास की ऐसी कोई भी नीति तब तक सफल नहीं कही जा सकती जब तक वह आर्थिक के साथ-साथ कुछ सीमा तक सामाजिक विकास न करती हो। इसलिए आर्थिक व सामाजिक विकास